International Journal of Applied Research 2019; 5(3): 377-379

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(3): 377-379
www.allresearchjournal.com
Received: 09-02-2019
Accepted: 16-03-2019

डॉ. राम संयोग राय
सह प्राचार्य, संस्कृत विभाग, नागार्जुन–उमेश संस्कृत महाविद्यालय, तरौनी, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ. राम संयोग राय
सह प्राचार्य, संस्कृत विभाग, नागार्जुन–उमेश संस्कृत महाविद्यालय, तरौनी, दरभंगा, बिहार, भारत

कालिदास के साहित्य में तकारत्रय

डॉ. राम संयोग राय

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति में तकारत्रय (त्याग, तपस्या एवं तपोवन) की विशेष महत्ता वर्णित है। इसके कारण उसकी उदात्तता की उज्ज्वलता अक्षुण्ण है। उसके आध्यात्मिक मूल्य के संवर्द्धन तथा संरक्षण में इसकी महती भूमिका है। कालिदास भारतीय संस्कृति के सम्पोषक है; जिनके कालजयी साहित्य में त्याग, तपस्या एवं तपोवन का रोचक सरल तथा स्वाभाविक वर्णन है। इनके पूर्व तथा पश्चात् संस्कृत वाङ्मय में इसका विशद विवेचन है। त्याग, तपस्या, तपोवन–इन तीनों में पारस्परिक अन्योन्याश्रितता है। प्रकृत शोधालेख के परिप्रेक्ष्य में कहने का अभिप्राय है त्यागी ही तपोवन में तपस्या कर अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त कर सकता था।

सामाजिक परिप्रेक्ष्य में त्यागी उदारचेता होते थे, जिनका उज्ज्वल यश सर्वत्र फैला था। त्याग–भावना लोककल्याण की भावना से अनुप्राणित थी। इस पुनीत भावना के आते ही उनका अभिमान समाप्त हो जाता था। रघुवंशी राजा त्याग हेतु धन का संग्रह करते हैं।[1] राजा दिलीप राज्यसुख का परित्याग करने के पश्चात् वशिष्ठ के आश्रम में नन्दिनी की विधिवत् सेवा के फलस्वरूप वीरपुत्र रघु को प्राप्त करते हैं। रघुवंश के पंचम सर्ग में रघु के त्याग की उज्ज्वल गाथा विवेचित है। नवम सर्ग में दशरथ के द्वारा सुकर्मियों को प्रचुर धन देकर पालन–पोषण करने का उल्लेख है।[2] राजा अज ने भी अपनी सम्पत्ति से दूसरों को पर्याप्त लाभ पहुँचाया है।।[3] पिता के आज्ञापालन हेतु राज्यसुख से विमुख होकर राम चौदह वर्षों तक वन में तपस्वी का जीवन व्यतीत करते हैं। पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर भरत अयोध्या की राजलक्ष्मी से उदासीन होकर नन्दिग्राम में राम के राज्य की रक्षा करते हुए अपने अनुपम त्याग का परिचय देते हैं।

नगर से सुदूर वन के एक हिस्से में नदी के तट पर रमणीक प्राकृतिक वातावरण में तपोवन (आश्रम) अवस्थित था। वहीं एकान्त में महर्षि लोग षड्विकारों का परित्याग कर किसी विशेष प्रयोजन की सिद्धि के लिए तपस्या करते थे। पक्षियों का मधुर कलरव, फूलों की महक, शीतल, मन्द एवं सुगंधित पवन का बहना, ऋषिकन्याओं का जल से वृक्ष सेचन–कर्म, मृगों का स्वच्छन्द विचरण, परस्पर विरोधी पशुओं–मृगों–सिंहों में निर्वैरता अर्थात् मैत्रीभाव से निवास, हवनकुण्ड से निःसृत धूमों की सुगन्ध का प्रसार आदि नैसर्गिक उपादान बरबस अतिथियों को अपनी ओर आकर्षित करते थे। कालिदास ने अपनी कृतियों में इनकी सरलता एवं सरसता से विवेचना की है। तपोवन की नैसर्गिकता का चित्रण उन्होंने राजा दुष्यन्त के मुख से इस तरह कहलवाया है– ''कहीं वृक्षों के नीचे सुग्गों के घोंसलों से गिरे हुए तिन्नी के दाने बिखरे पड़े हैं, कहीं इधर–उधर पके हुए चिकने पत्थर यह बतला रहे हैं कि इन पर हिंगोट के फल कूटे गये हैं, कहीं निडर खडे मृग इस विश्वास से रथ का शब्द सुन रहे हैं कि आश्रम में हमें कोई नहीं छेड़ेगा और कहीं नदी–नालों पर आने–जाने की राहों पर मुनियों के वल्कलों से टपकी हुई जल की रेखाएँ बनी हुई हैं। और देखों–वायु के कारण लहरे लेने वाले पानी की गूलों से यहाँ वृक्षों की जड़ें घुल गयी हैं, घी के धुएँ से नई चमकीली कोपलों का रङ्ग धुँधला पड़ गया है और जहाँ–जहाँ उपवन से कुशा उखाड़ ली गयी है, वहाँ मृग–छौने निडर होकर धीरे–धीरे घूम रहे हैं।''[4]

कालिदासकालीन आश्रम (तपोवन) ज्ञान–विज्ञान तथा अनुसन्धान का केन्द्र था, जहाँ ऋषि–महर्षि आध्यात्मपरक अनुसन्धान करते थे। वहाँ गुरुकुल की परम्परा में आचार्य/ कुलपति शिष्यों को पूरे मनोयोग से सुशिक्षित करते थे। वे युगनिर्माता के रूप में राष्ट्र के भाग्यविधाता शिष्यों के निर्माण में अपनी सशक्त भूमिका का निर्वाह कर रहे थे। आचार्य तथा शिष्य में पितृ–पुत्रवत् सम्बन्ध था। शिष्य ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वहाँ के निर्धारित दैनन्दिन कृत्यों का सम्पादन करते थे। महर्षि वर तन्तु से कौत्स, महर्षि वाल्मीकि से लव और कुश, महर्षि कण्व से वैखानस, शार्ंगरव, शारद्वत, हारीत तथा गौतम नं एवं भगवान् च्यवन मुनि से आयुष्कुमारा ने विद्या पायी है। महर्षि वशिष्ठ के आश्रम (तपोवन) में शिष्यों के विद्याध्ययन का उल्लेख है।

कालिदासकालीन भारत में तपोवन (आश्रम) का प्रधान कुलपति अध्यापन का काम करते थे। कालिदास ने अपनी कृतियों में वशिष्ठ, वाल्मीकि एवं कण्व जैसे कुलपतियों की चर्चा की है। वहाँ पुराणकालीन कुलपति की अवधारणा परिलक्षित होती है। जहाँ वर्णित था –

मुनीनां दशसाहस्रं योऽन्नदानादिपोषणात्।
अध्यापयति विप्रर्षिरसौ कुलपतिः स्मृतः।।

तपोवनवासियों का हृदय निश्छल तथा पावन था। वहाँ की छटा मनभावनी तथा लुभावनी थी। वहाँ पहुँचने पर मानव शाप्ति का अनुभव करता था। इस संदर्भ में राजा दुष्यन्त सारथी से कहते हैं – ''पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मानं पुनीमहे।''[5] इस शान्त आश्रम (तपोवन) की भूमि में जब उनकी दाहिनी भुजा फड़कती है, तब उन्हें स्त्रीरत्न (शकुन्तला) की प्राप्ति होती है। हेमकूट पर्वत पर अवसिथत मारीच के आश्रम (तपोवन) में पहुँचकर वे अपना हृदयोदगार प्रकट करते हुए कहते हैं – ''यहाँ पर तो स्वर्ग से भी बढ़कर शान्ति है। ऐसा लगता है मानो मैं अमृतकुण्ड में कूद पड़ा हूँ।''[6]

आश्रम (तपोवन) के महर्षि (आचार्य/कुलपति) के प्रति राजा में आदर–भावना थी। पुत्र प्राप्ति की कामना से राजा दिलीप अपनी पत्नी सदक्षिणा के साथ वशिष्ठ के आश्रम (तपोवन) में पहुँचने पर उन्हें तथा उनकी धर्मपत्नी अरुन्धती जी के चरणों में विनीतभाव से प्रणाम करते हैं। वे उनके आदेशानुसार ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वहीं निवास करते हैं तथा कामधेनु की पुत्री नन्दिनी की सेवा के फलस्वरूप उससे पुत्रप्राप्ति का वरदान प्राप्तकर अपनी राजधानी लौटते हैं, जहाँ सुदक्षिणा के गर्भ से उन्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति होती है। जब आश्रम (तपोवन) से वरतन्तु के शिष्य तपस्वी कौत्स शुरु दक्षिणा में धन देने के लिए राजा रघु के पास पहुँचते हैं, तब वे उनसे उनके गुरु तथा वहाँ का कुशल पूछते हुए उनका यथोचित अतिथि–सत्कार कर धन्यता का अनुभव करते हैं। वे विश्वजित् यज्ञ में अपना सब प्रकार के कोष दान करने के बावजूद उन्हें 14 कोटि स्वर्णमुद्रा देते हैं। जब राजा दुष्यन्त को जानकारी होती है कि अतिथ्य का दायित्व शकुन्तला को सौंपकर महर्षि कण्व उसके दुष्ट ग्रहों के शमनार्थ सोमतीर्थ प्रास्थित हो गये हैं, तब वे कहते हैं – ''सा खलु विदितभक्तिं मां महर्षेः करिष्यति।''[7] पुनः वे आश्रम (तपोवन) से पहले ही रथ से उतरते हुए सारथी से कहते हैं – ''विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नामा''[8] पञ्चमाङ्क के कञ्चु की से कुछ तपस्वी के द्वारा महर्षि कण्व का सन्देश लेकर स्त्रियों के साथ आने की खबर पाकर वे सादर कण्व के प्रति उत्कण्ठित हो जाते हैं।[9] वे उससे कहते हैं कि कुलपरोहित सोमरातजी से कहला दो कि वे उनका वैदिक रीति से आदर–सत्कार करके अपने साथ ही मेरे नजदीक लायें। स्वर्गलोक से देवराज इन्द्र के रथ पर आरूढ होकर सारथी मातलि के साथ हेमकूट पर्वत पर तपस्यारत मारीच के प्रति उनके हृदय में श्रद्धा का भाव जागृत होता है। फलतः उन्होनें कहा है– ''तेन ह्यनतिक्रमणीयानि। श्रेयांसि प्रदक्षिणीकृत्य भगवन्तं गन्तुमिच्छामि।''[10] आगे बढ़कर वे पुनः कहते हैं – ''नमोऽस्मै कष्टतपसे।''[11]

कालिदास ने तपोवनों में तपस्वियों की कठोर तपश्यर्या की विशद विवेचना की है। शातकर्णि ऋषि के विषय में इस बात की चर्चा है कि पूर्व में वे तपस्या के दौरान मृगों के साथ तृण खाकर जीवन व्यतीत करते थे। किन्तु इन्द्र के द्वारा भेजी गयी अप्सराओं से वे तपभ्रष्ट हो जाते हैं।[12] तपस्वी सुतीक्ष्ण सच्चरित्र तथा उदारमना हैं।[13] उनके तप से इन्द्र को डर होता है। अतः उनके द्वारा भेजी गयी अप्सराएँ अपनी मनमोहक भाव–भंगिमाओं से उन्हें अपनी ओर आकर्षित नहीं कर पाती हैं।[14] वे अपनी दृष्टि सूर्य पर केन्द्रित किये रहते हैं। शरणागतरक्षक अग्निहोत्री शरभङ्ग ऋषि ने चिरकाल तक अग्नि को समिधा से तृप्त करने के पश्चात् अन्त में मंत्रों से पवित्र देह की उसमें आहुति दे दी।

कुमारसम्भव के तृतीय सर्ग में तपोनिष्ठ शिव का उल्लेख है। पञ्चम सर्ग में उन्हें पतिरूप में प्राप्त करने के लिए पार्वती उग्र तपस्या करती हैं। उनकी तपस्या के समक्ष बड़े तपस्वियों की तपश्चर्या लज्जित हो जाती है। इतना ही नहीं शिव को भी कहना पड़ता है – ''हे कोमल शरीरवाली! आज से तुम मुझको तप से खरीदा हुआ अपना दास समझो।'' सप्तमसर्ग में वे मृत्युञ्जय शिव को पति तथा उनके अलौकिक प्रेम को पाकर अपनी तपस्या की सिद्धि को सार्थक करती हैं। मारीच ऋषि हेमकूट पर्वत पर शरीर की उपेक्षा कर तपोनिरत हैं, जो उनकी तपस्या की पराकाष्ठा है। इस सन्दर्भ में कालिदास ने मातलि के मुख से कहलवाया है; यथा–

वल्मीकार्धनिमग्नमूर्तिरुरसा सन्दष्टसर्पत्वचा
कण्ठे जीर्णलताप्रतानवलयेनात्यर्थसम्पीडितः।
अंसव्यापि शकुन्तनीडनिचितं बिभ्रज्जटामण्डलं
यत्र स्याणुरिवाचलो मुनिरसावभ्यर्कबिम्बं स्थितः।।[15]

तपोभूमि हेमकूट पर्वत पर कुछ मुनिजन इंद्रियसंयम करते हुए निःस्पृह भाव से तपस्या कर रहे हैं। वर्णाश्रम पर अधृत समाज में अद्विजाति तप करने के अधिकार से वंचित था।[16] वेदव्यास की तरह कालिदास ने भी तीन प्रकार के तपों– शारीरिक, वाचिक एवं मानसिक का वर्णन किया है।[17] उक्त के अलावा गीता में सात्त्विक, राजस एवं तस, इन तीन प्रकार के तपों की भी चर्चा है।[18] कालिदास की कृतियों में तपस्वियों के भेद–जटिल, साधक और यति के नामोल्लिखित हैं। उनके परिधानों में वल्कल की प्रमुखता थी।

उस समय ऋषिमुनि तपोबल के धनी होते थे। महर्षि वशिष्ठ तप से समन्वित योगबल से राजा दिलीप की सन्तान–प्राप्ति की रुकावट तथा इसी वजह से महर्षि वाल्मीकि भी राम के द्वारा सीता के परित्याग की घटना को जान जाते हैं। तपस्वी अगस्त्य ऋषि ने सिर्फ भ्रूकुटी टेढ़ी कर राजा नहुष को इन्द्रपद से च्युत कर दिया। उनके उदय होने पर वर्षा के गन्दे जल में स्वच्छता आ जाती है। तपस्वियों की तपस्या इन्द्र के वज्र की धार तक को भी कुण्ठित कर देती है। तपस्वी के तेज के प्रभाव के सन्दर्भ में कालिदास का कथन समीचीन है; यथा–

अवेक्ष्य शमं ते तस्मिन्न प्रजहनुः स्वतेजसा।
त्राणाभावे हि शापास्त्राः कुर्वन्ति तपसो व्ययम्।।[19]

ऐसा ही दृष्टान्त अन्यत्र भी वर्णित है; यथा –

शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढ़ं हि दाहात्मकमस्ति तेजः।
स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तास्तदन्यतेजोऽभिभवाद्वमन्ति।।[20]

महर्षि कण्व के आश्रम में अतिथि रूप में आगत महर्षि दुर्वासा तपोबल से जान जाते हैं कि मुझ जैसे उपस्थित तपोधन (तपस्वी) की उपेक्षाकर किसी की याद में खोयी हुई है। फलतः स्वभाव से कोधी वे उसे दारुण शाप देते हैं।[21] तप के प्रभाव से ही महर्षि कण्व सब कुछ प्रत्यक्ष रूप से देखने में समर्थ हैं।[22]

कालिदास के आदर्श पात्रों–पार्वती, सीता, दिलीप, राम, भरत, लक्ष्मण आदि का जीवन त्यागमय रहा है। तपोवन के सन्निध्य में रहनेवाला प्राणी तेजस्वी, ओजस्वी, जितेन्द्रिय, परोपकारी एवं अहिंसक होता है। उसके अन्तःकरण में स्वच्छता तथा शुचिता की मन्दाकिनी प्रवाहित रहती है। तपोवन की संस्कृति के महत्व को रेखांकित करते हुए आचार्य बलदेव उपाध्याय ने कहा है– ''तपोवन भारतीय संस्कृति के प्रधानपीठ हैं। आध्यात्मिकता के आगार, नैतिकता के निकेतन, सात्विकत्ता के शुभ सदन भारतीय

तपोवन हमारी आध्यात्मिक संस्कृति के कमनीय क्रीड़ास्थल है। तपोवन के अञ्चल में हमारी संस्कृति जनमी और पनपी। भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता का पाठ विश्व को जिन ऋषियों ने पढ़ाया, उनका जीवन तपोवन में ही समृद्ध तथा विकसित हुआ था।''[23] कालिदास का संकेत है कि तपोवन की गोद में पल्लवित, पुष्पित एवं फलित संस्कृति में लोकमंगल की पुनीत कामना निहित होती है। वर्तमान भोग–विलास में लिप्त लोगों को आचार्य बलदेव उपाध्याय ने सुझाव दिया है– ''जब तक यह संसार त्याग और तपस्या का आश्रय लेकर तपोवन की ओर नहीं मुड़ेगा, तब तक उसकी अशांति कभी नहीं बुझेगी, न पारस्परिक कलह कभी समाप्त होगा, और न वैमनस्य की भावना कभी मिटेगी।''[24]

निष्कर्ष

कालिदासकालीन त्याग एवं तपस्या से संवलित तपोवन की संस्कृति में कतिपय वैश्विक समस्याओं के समाधान के अन्तःसूत्र अनुस्यूत हैं। तकरत्रय में निहित उपदेश को आत्मसात् कर समाज को स्वच्छ तथा स्वस्थ बनाया जा सकता है, जहाँ त्याग, सेवा, सहयोग, प्रेम, करुणा, मैत्री आदि उदात्त भावनाओं की प्रमुखता होगी। विशेषकर, पर्यावरण प्रदूषण के निवारणार्थ तपोवन की संस्कृति वर्तमान में उपादेय है।

सन्दर्भ

1. कालिदास–ग्रन्थावली, रघुवंश, 1/7, व्याख्याकारः पण्डित श्रीरामतेज शास्त्री, सम्पादक : डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चौखम्बा, सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण : 2012।
2. वही, रघुवंश, 9/3।
3. वहीं, रघुवंश, 8/31।
4. वही, अभिज्ञानशकुन्तल, 1/14–15।
5. वही, अभिज्ञानशकुन्तल, प्रथम अङ्क, पृ०–350।
6. वही, अभिज्ञानशकुन्तल, सप्तक अङ्क, पृ०–455।
7. वही, अभिज्ञानशकुन्तल, प्रथम अङ्क, पृ०–350।
8. वही, अभिज्ञानशकुन्तल, प्रथम अङ्क, पृ०–351।
9. वही, अभिज्ञानशकुन्तल, पञ्चम अङ्क, पृ०–412।
10. वही, अभिज्ञानशकुन्तल, सप्तम अङ्क, पृ०–454।
11. वही, अभिज्ञानशकुन्तल, सप्तम अङ्क, पृ०–455।
12. वही, रघुवंश, 13/39।
13. वही, रघुवंश, 13/41।
14. वही, रघुवंश, 13/42।
15. वही, अभिज्ञानशाकुन्तल, 7/11।
16. वही, रघुवंश, 15/51–52।
17. गीता, 17/14–16, रघुवंश, 5/5।
18. गीता, 17/17–19।
19. कालिदास–ग्रन्थावली, रघुवंश, 15/3।
20. वही, अभिज्ञानशाकुन्तल, 2/7।
21. वही, अभिज्ञानशाकुन्तल, 4/1।
22. वही, अभिज्ञानशाकुन्तल, सप्तम अङ्क, पृ.–469
23. संस्कृत सहित्य का इतिहास–आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन, वाराणसी, संस्करण सम्वत् 2035, पृ.–106।
24. वही, पृ०–167।